सामाजिक विषमताओं के बीच स्त्री विमर्श और प्रभा खेतान का जीवनवृत्त

*रेखा पाण्डेय

पृथ्वी पर मानव की मौज़ूदगी प्रकृति की संतुलित स्थतियों पर टिकी है। मानव ही क्यों सृष्टि के सारे जैविक संघटक प्रकृति के संतुलन पर ही आश्रित हैं। इसके बावज़ूद वह (मनुष्य) स्वयं को इतना ताक़तवर समझ लेता है कि भले वह प्रकृति द्वारा ही पोषित होता है लेकिन, उसी प्रकृति के अन्य संघटको के साथ भेद-भाव करने लगता है, उन्हें रौंद देना चाहता है उनके अस्तित्व को खत्म कर देना चाहता है। महादेवी वर्मा का मानना है कि 'सामाजिक भावना का जन्म परस्पर हानि पहुँचाने वाले आचरण तथा नए स्थानों में शक्ति-संगठन की आवश्यकता से हुआ है। यानी मनुष्य जीवन और सुविधाओं की तलाश में अलग-अलग दिशाओं में फैलने लगा तब उसे समूह और संगठन की आवश्यकता महसूस होने लगी। लोग एक दूसरे के निकट बसने लगे और इस तरह एक समाज का निर्माण होने लगा।' आगे चलकर मनुष्य अपनी सुविधा के अनुसार समाज के नियम, सत्ता और संस्थाएँ बनाने लगा और उन्हीं नियमों, सत्ता और संस्थाओं का सहारा लेते हुए प्रकृति के दूसरे अवयवों का शोषण भी करने लगा। ऐसा भी नहीं है कि सारी मानव जाति एक दूसरे का सहयोग करती है, एक दूसरे से प्रेम करती है बल्कि, वहाँ भी आपसी भेद-भाव है। वहाँ वर्ण भेद, रंग भेद, वर्ग भेद, जाति भेद और सबसे बड़ा भेद- लिंग भेद है। उसी प्रकृति की एक जैविक संघटक है- स्त्री, जिसे एक ओर आधी दुनिया की संज्ञा दी जाती है और दूसरी ओर हर समाज और देश में प्रकृति का सबसे कमज़ोर संघटक समझा जाता है। उसे सदियों से नियंत्रित किया जाता रहा है, सामाजिक संस्थाओं (विवाह आदि) और पुरुष सत्ता की अधीनता स्वीकारने के लिए मज़बूर किया जाता रहा है। हमारे आस-पास कैसा समाज बनता गया जहाँ एक स्त्री को माँ बहन या पत्नी तो समझा जाता है परन्तु उसे स्त्री या मनुष्य नहीं समझा जाता है। "शताब्दियाँ की शताब्दियाँ आती जाती रहीं, परन्तु स्त्री की स्थिति की एकरसता में कोई परिवर्तन न हो सका किसी भी स्मृतिकार ने उसके जीवन की विषमता पर ध्यान देने का अवकाश नहीं पाया किसी भी शास्त्रकार ने पुरुष से भिन्न करके उसकी समस्या को नहीं देखा।" (श्रृंखला की कड़ियाँ पृ. 89) वह किसी से प्रेम करती है परन्तु वह एक अच्छी प्रेमिका तभी तक होती है जब तक प्रेमी की अधीनता को स्वीकार कर पाती है। यह ठीक है कि "भिन्न-भिन्न स्वभाव और स्वार्थवाले व्यक्तियों के

आचरणों में कुछ विषमता अवश्य ही रहती है, परन्तु जब इस विषमता की मात्रा सामंजस्य की के समान या उससे अधिक हो जाती तब समाज की सामूहिक प्रगति दुर्गति में परिवर्तित होने लगती है। इस विषमता का चरम सीमा पर पहुँच जाना ही क्रांति को जन्म देता है, जिससे समाज की व्यवस्था को नई रूप रेखा मिलती है।" (श्रृंखला की कड़ियाँ पृ. 113) ऐसी ही सामाजिक विषमताओं ने स्त्री विमर्श जैसे आन्दोलन को जन्म दिया।

"वास्तव में किसी विषय या अवधारणा के बहस, चर्चा और बातचीत के माध्यम से किसी अन्य अभिलक्षित सिद्धांत या अवधारणा या विचारधारा तक पहुँचाने की प्रक्रिया को विमर्श कहा जा सकता है। विमर्श स्वयं कोई सिद्धांत नहीं है, यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जो विमर्शित विषय को कई आयामों के माध्यम से किसी अभिलक्षित लक्ष्य तक पहुँचाने का कार्य करती है। विमर्श के इस सन्दर्भ में स्त्री विमर्श का अर्थ है 'स्त्री' की परम्परागत 'छवि' और 'पहचान' से अलग एक नई 'पहचान' एक नई 'छवि' का निर्माण करन । स्त्री के अस्तित्व, उसके अधिकारों, उसकी अस्मिता उसके एक मानवीय इकाई के रूप में प्रतिष्ठित होने के संघर्ष को स्त्री-विमर्श कहा जा सकता है।"[1] स्त्री विमर्श का अर्थ हर पुरुष का विरोध करना नहीं है बल्कि इसके विपरीत स्वयं को एक मानवीय इकाई के रूप में देखना 'स्त्री विमर्श' है।

"मनुष्य को समूह बनाकर रहने की प्रेरणा पशु- जगत के समान प्रकृति से मिली, इसमें संदेह नहीं परन्तु; उसका क्रमिक विकास विवेक पर आश्रित है, अन्ध प्रवृत्ति मात्र पर नहीं। मानसिक विकास के साथ-साथ उसमें जिस नैतिकता की उत्पत्ति और वृद्धि हुई, उसने उसे पशु-जगत से सर्वथा भिन्न कर दिया।" (श्रृंखला की कड़ियाँ पृ. 111) "मनुष्य-जाति का, बर्बरता की स्थिति से निकलकर मानवीय गुणों तथा कला कौशल की वृद्धि करते हुए सभ्य और सुसंस्कृत होते जाना ही उसका विकास है। इस विकास की ओर अग्रसर होकर ही व्यक्ति समाज को अग्रसर करता है।" (वही पृ. 113) यह है कि प्रकृति के समस्त जैविक संघटकों में सबसे उत्कृष जीव मनुष्य है क्योंकि उसमें चेतना है, संवेदनशीलता है और रचने की क्षमता है। लेकिन कभी-कभी लगता कि सबसे अधिक संवेदनहीन प्राणी मनुष्य ही है। यदि ऐसा नहीं होता वह अपनी ही एक इकाई को शारीरिक, आत्मिक, मानसिक और सामाजिक रूप प्रताणित नहीं करता। आज भी हर तीसरे मिनट एक बच्ची या एक स्त्री पुरुष की अमानवीयता का शिकार हो रही है। अखबार के पहले पन्ने से लेकर अंतिम पन्ने तक उसकी बर्बरता की कहानियाँ भरी रहती हैं। महादेवी वर्मा ने अपने लेखन में भारतीय स्त्री के चुभते सवालों को बड़ी तीव्रता के साथ उठाया है। उनकी पुस्तक 'श्रृंखला की कड़ियाँ' का ऐतिहासिक महत्व है। यह पुस्तक 1942 में प्रकाशित हुई लेकिन इसमें प्रकाशित अधिकतर लेख 1932-33-34 में लिखे गए हैं।

लोगों को यह लगता है और कुछ हद तक ठीक भी है कि आज भी स्त्रियाँ सामाजिक जड़ताओं की शिकार तो हो रही हैं लेकिन अपने उत्पीड़न के विरुद्ध उनमें अस्वीकार अथवा विरोध की भावना आज जागृत हुई है। वर्तमान संदर्भ में नारी अपनी हीन दशा को मौन स्वीकृति न प्रदान करके समाज की इस शोषणकारी व्यवस्था का प्रतिकार करने की कोशिश अवश्य कर रही है। प्रभा खोतान यह मानती है कि अतीत में स्त्री ने विरोध की भाषा नहीं सीखी थी आज स्त्री प्रतिरोध की भाषा जानती है। वह जानती है कि स्त्री समस्या को वह वृहत्तर सामाजिक संरचनाओं से जोड़ पायेगी और उसे नये संदर्भों में समझी जायेगी। वह जानती है कि समाज में शोषण और दमन कई स्तरों पर होता है। और इन शोषणकारी संरचनाओं के खिलाफ होने वाले संघर्ष से जुड़े बिना स्त्री का संघर्ष आगे नहीं बढ़ सकता। स्त्री-विमर्श का मुख्य उद्देश्य पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति है। यह सही है कि परम्परा के खिलाफ उद्दण्ड होने के बजाय विनम्र होना चाहिए पर विनम्रता का यह अर्थ नहीं कि जिस परम्परा ने स्त्री का दोहन किया है, उसका ही महिमामण्डन किया जाए और ब्राह्मणवादी संस्कृति के आधार पर निर्मित स्त्री विरोधी पुराण, गाथाओं, स्मृतियों के श्लोकों की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की जाए। अत: वर्तमान स्त्री अतीतोन्मुखी नहीं है। वह अतीत का विरोध करती है। लेकिन प्रश्न यह है कि भारत की कितनी प्रतिशत महिलाएँ ऐसा कर पा रही हैं।

आज न केवल हिन्दी में बल्कि दुनिया की सभी भाषाओं में लेखिकाएँ स्त्री-अधिकारों के सवालों को लगातार उठा रही हैं और उनकी सामाजिक स्थिति को सामने लाने का प्रयास कर रही हैं लेकिन जो सच्चाई स्त्री लेखिकाओं की आत्मकथाओं में देखने को मिलती है वह दूसरी विधाओं में कम दिखई देती है। स्त्री लेखन की मूल और अंतरंग अनुभूतियों के लिए आत्मकथा विधा अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बनता जा रहा है। स्त्री लेखिकाओं ने अपने कथा-पात्रों के जीवन की अपेक्षा अपने स्वयं के जीवन के माध्यम से स्त्री जीवन से जुड़े महत्वपूर्ण प्रश्नों को पाठकों के सामने रखने का साहस किया है। हिन्दी साहित्य में भी कई लेखिकाएँ आत्मकथा लिख चुकी हैं। चन्द्रकिरण सौनरिक्सा के 'पिंजरे की मैना', मन्नु भंडारी की 'एक कहानी यह भी', प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या', पदमा सचदेव की 'बूँद बावड़ी', मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तुरी कुण्डल बसै' तथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया', कुसुम अंसल की 'जो कहा नहीं गया' और कृष्णा अग्निहोत्री की 'लगता नहीं है दिल मेरा' आदि उल्लेखनीय आत्मकथाएँ हैं।

जहाँ तक प्रभा खेतान की आत्मकथा- 'अन्या से अनन्या' का सवाल है तो वह उपर्युक्त आत्मकथाओं से बिल्कुल अलग हटकर है। वह जितना व्यक्तिगत है उतना ही सामाजिक है। वह सिर्फ प्रभा खेतान की कथा नहीं है बल्कि 1950 से लेकर 1993 तक की भारतीय राजनीति एवं बदलती सरकारों की भूमिका की भी कथा है, 1950 से लेकर 1993 तक के वैचारिक एवं छात्र आंदोलनों की भी कथा है। इसके समानान्तर

पनपते, डूबते, देश की सीमाओं को पार करते भारतीय बाज़ार की भी कथा है- 'अन्या से अनन्या'।

'अन्या से अनन्या' तमाम ऐसी स्त्रियों की आत्मकथा है जो आर्थिक रूप से सक्षम होते हुए सामाजिक बहिष्कार की शिकार होती है। इस आत्मकथा के माध्यम से प्रभा खेतान ने विवाहेतर संबंधों एवं एक स्त्री के 'दूसरी औरत' में तब्दील हो जाने की वास्तविकता को बड़े मार्मिक दंग से प्रस्तुत किया है। लेखिका ने अपने जीवन के सभी पहलुओं को पूरी ईमानदारी और सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया है। प्रभा खेतान बचपन से ही तार्किक स्वभाव की थी। भारतीय समाज में और विशेषकर मारवाड़ी समाज में एक लड़की या स्त्री का यह सबसे बड़ा अपराध होता है। प्रभाजीका दूसरा अपराध उनका बेहद संवेदनशील होना था। इन अपराधों का दंड उन्हें आजीवन भुगतना पड़ा। उन्होंने कभी विवाह नहीं किया बल्कि, आजीवन डॉ. सर्राफ की दूसरी औरत बनकर रहीं। उनके भीतर जबरदस्त निर्णय-स्वातंत्र्य का भाव भरा हुआ था। अपने चुनाव की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने के पश्चात वह उस चुनाव के परिणाम को भुगतने को भी तैयार थी। उन्होंने डॉ. सर्राफ को चुना था, पूरी तरह से और हर तरह से। उन्हें इस बात का कोई पश्चाताप नहीं था। हाँ उनके भीतर प्रेम पाने की एक पागल-सी इच्छा थी । वह प्रेम के संबंध को दुनिया के हर संबंध से ऊपर और पवित्र मानती हैं इसीलिए आजीवन अविवाहित रहने का कठोर निर्णय लेती हैं। लेकिन डॉ. सर्राफ उनके प्रति अंत तक वफादार नहीं रह पाते हैं। इसबात से वे टूट जाती हैं। प्रभा खेतान की जीवनी पढ़ने के बाद सहज ही अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि प्रेम का उनके जीवन में क्या महत्व था। डॉ. सर्राफ की मृत्यु के लगभग चौदह साल बाद 'अन्या से अनन्या' का प्रकाशन हुआ। ऐसा नही है कि प्रभाजी ने उसके बाद लिखना छोड़ दिया या उसके बाद उनके जीवन में कुछ भी घटित नहीं हुआ लेकिन, प्रभा खेतान के जीवन का बड़ा हिस्सा डॉ. सर्राफ की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाता है इसलिए उनकी आत्मकथा भी वहीं समाप्त हो जाता है।

हिन्दी साहित्य में प्रभा खेतान कोई अपरिचित नाम नहीं है।उन्होंने स्त्री सशक्तिकरण तथा स्त्री अस्मिता की लड़ाई ही नहीं लड़ी बल्कि उसे साबित करके भी दिखाया। एक सफल उद्योगपति महिला के रुप में उन्होंने देश ही नहीं बल्कि विदेशों में भी अपनी पहचान बनाई। उनका अधिकांश लेखन आत्मकथात्मक ही है। मारवाड़ी समाज की दकियानूस पारंपराओं संकीर्णताओं के बीच वह जिस तरह विद्रोह करती हैं, वह साहस का है।

चूँकि उनके लिए प्रेम जीवन का सबसे बड़ा यथार्थ था, और प्रेम तो व्यक्तियों या संघटकों के बीच ही होता है। अतः उनकी अपेक्षा थी कि यदि प्रेम करना अपराध है तो स्त्री-पुरुष दोनों अपराधी होंगे परन्तु सबकी प्रश्न भरी आँखें स्त्री की ओर ही क्यों रहती है। कहीं भी जाओं प्रश्न के घेरे में स्त्री ही होती है। लगभग

पच्चीस साल प्रेम की सारी एकनिष्ठता सिर्फ स्त्री से ही अपेक्षा की जाती है और पुरुष से नहीं। वे कहती है- " स्त्री को ही सारे लांछन सहने पड़ते हैं । पुरुष से कोई कुछ क्यों नहीं कहता। संबंध तो दो व्यक्तियों का होता है। दोनों ही इसके लिए उत्तरदायी हैं।"[6] आत्मकथा में यह भी उल्लिखित है कि लकीर से हटकर चलने के कारण सामाजिक अस्वीकृति और ताने उसे दिन-रात झेलने पड़े। सदा एक चरम मानसिक यंत्रणा को भोगते रहने को, एक स्थायी आतंक को झेलते रहने को वह बाध्य रही। शादी न करने का उनके निर्णय के कारण सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति प्रभा से यही सवाल करता कि आखिर उसने शादी क्यों नहीं की। इस बात को लेकर उनके ऊपर फिकरे कसे गए और स्केंडल भी बना। समाज जितनी जल्दी एक अविवाहिता स्त्री को शक की निगाह से देखता है उतना शक विवाहित पर नहीं करता। उनकी माँ कहा करती कि बेटी ब्याह कर ले, लाल घाघरे में सारे दाग छुप जाते हैं। मगर सफेद आँचल में एक भी दाग बड़ा भद्दा लगता है। एक स्त्री जिसके पास अपना काम है, बैंक में बेलेंस है पर इसके बावजूद समाज के नजर में वह पथभ्रष्ट और अपवित्र है, सिर्फ इसलिए कि उसने शादी नहीं की।

इस विवाह रूपी संस्था का इतना महिमामंडन क्यों? आखिर स्त्री विवाह करे भी तो क्यों? जिस विवाहित जीवन में ऐसा कोई छोटा सा कोना नहीं जहाँ स्त्री बैठकर कुछ सोच सके। स्त्री अधिकारों के प्रबल समर्थक 'जॉन स्टुअर्ट मिल'[7] ने परिवार और विवाह की संस्थाओं के स्त्री-उत्पीड़क, अनैतिक चरित्र के ऊपर से रागात्मकता के आवरण को नोंच फेंका और उन नैतिक मान्यताओं की पवित्रता का रंग-रोगन भी खुरच डाला है जो सिर्फ स्त्रियों से ही समस्त एकनिष्ठता, सेवा और समर्पण की माँग करती है और पुरुषों को उड़ने के लिए लीला-विलास का अनन्त आकाश मुहैया कराती है। पितृसत्ता में बचपन से ही समर्पण, निर्भरता, त्यागपूर्ण प्रेम और वफादारी के आदर्शों व नैतिक शिक्षाओं से स्त्री की सोच को अनुकूलित कर के उन्हें दिमागी गुलाम बनाने का पूरा प्रयास किया गया है। मिल के अनुसार, प्राचीन काल में बहुत से स्त्री-पुरुष दास थे। फिर दास-प्रथा के औचित्य पर प्रश्न उठाने लगे और धीरे-धीरे यह प्रथा समाप्त हो गयी। लेकिन स्त्रियों की दासता धीरे-धीरे एक किस्म की निर्भरता में तब्दील हो गयी। मिल स्त्री की निर्भरता को पुरातन दासता की ही निरन्तरता मानते हैं जिस पर तमाम सुधारों के रंग-रोगन के बाद भी पुरानी निर्दयता के चिह्न अभी भी मौजूद हैं और आज भी स्त्री-पुरुष असमानता के मूल में 'ताकत' का वही आदिम नियम है जिसके तहत ताकतवर सब कुछ हथिया लेता है।

इसी ताकतवर और वर्चस्वादी व्यवस्था की उन्मूलन का आह्वान प्रभा खेतान ने 'अन्या से अनन्या' में किया है। किन्तु यह इतना आसान नहीं है। पुरुष हमेशा स्त्री पर भारी पड़ता रहा है। 'चूँकि सारे विधान, सारी संहिताएँ, सारे नियम, धर्म, कानून पुरुषों ने रचे हैं इसलिए हर कानून, हर रीति-रिवाज और परम्परा का

पलड़ा उनके पक्ष में झुका हुआ है।'[8] पुरुष सदा स्त्री शोषण के नये-नये औजारों के ईजाद में व्यस्त है। पहले सामंती और अब पूँजीवाद, दोनों ही व्यवस्था स्त्री शोषण के घातक औजार है। 'सामन्तीय व्यवस्था कुछ ही अर्थों में व्यक्ति को खास तौर से स्त्री को वस्तु की तरह इस्तेमाल करती थी, अन्ततः वह उसके लिए एक चेतन इकाई थी- चाहे माँ के रूप में, चाहे पत्नी के रूप में या फिर वेश्या के रूप में। पूँजीवादी व्यवस्था मनुष्य को वस्तु में तब्दील करने के लिए उसकी चेतना को भी जड़ बनाती जा रही है और उसे किसी भी रूप में मानवीय इकाई के बने रहने देने के लिए तैयार नहीं है।'[9] पूँजीवाद ने स्त्री को स्वतंत्र असल में शोषण करने के लिए जिस मिथ को गढ़ा है वह है सौन्दर्य का मिथक। इस मिथ के अनुसार किसी स्त्री का सांवली होना उसकी बदसूरती है और यह अपराध है। आलोच्य आत्मकथा में हम स्पष्ट रूप से यह देखते है कि प्रभा के साथ भी रंग के आधार पर भेद-भाव किया जाता है। प्रभा अपने साँवले रँग के कारण अपराधबोध से ग्रस्त होती है। प्रायः उनकी चाची-ताई उन्हें दाई की बेटी कहकर उनके अबोध मन को आघात पहुँचाती थीं। एक तो लड़की और उस पर साँवली रंगत, इस कारण प्रभा की माँ ने कभी उसे प्रेम नहीं किया। वह अपनी माँ के बदले दाई से अधिक जुड़ाव महसूस करती थी। साँवले रंग के कारण उनके भीतर हीनता का भाव था, इसलिए जब उम्र में अठारह साल बड़े डॉ. सर्राफ ने उनकी प्रसंसा की तो उनके मन का खाली पात्र लबालब भर गया और वह पूरे मन से डॉ. सर्राफ की ओर आकृष्ट होती है। बचपन में दाई माँ से और जवानी में डॉ. सर्राफ से, इन दोनों से ही प्रभा को अपार प्रेम मिला। अपनी माँ के साथ हमेशा एक दूरी का अनुभव किया। स्त्री-विमर्श के संदर्भ में जिस आत्मनिर्भरता की बात उठाई जाती है- दैहिक आत्मनिर्भता, मानसिक आत्मनिर्भरता तथा आर्थिक आत्मनिर्भर। यह सब प्रभा के पास था। पर आर्थिक आत्मनिर्भरता प्रभा के पास प्राचुर्य थी। अपने आत्मकथा में उन्होंने बताया कि किस प्रकार उन्होंने मात्र तीन सौ रुपये के वेतन से अपनी जिंदगी शुरू की थी। कहने को तो वह बड़े घर की बेटी थी पर उनके पास न कोई सोने का आभूषण और न बैंक बेलेंस था। एक अंधी जिद हमेशा उसके साथ रही कि आर्थिक स्वतंत्रता स्त्री स्वतंत्रता की पहली शर्त है। औरत की सारी स्वतंत्रता उसके पर्स में निहित है- सीमोन के इन शब्दों को बीज-मंत्र की तरह उन्होंने अपने जीवन में स्वीकार कर लिया। यह जानते हुए भी कि बड़ी फिसलन-भरी होती है व्यवसायिक सफलता की दुनिया। वह चमड़े के निर्यात के व्यापार में कूद पड़ी। शुरूआत में उन्हें विरोध भी झेलना पड़ा, पर वह हटी नहीं। उनके अनुसार औरतें जितनी गंभीरता से प्रेम को लेती हैं, उतनी ही गंभीरता से काम को लें तो कहाँ से कहाँ नहीं पहुँच सकती। आर्थिक असुरक्षा ने कभी उसे नहीं डराया । वह सीमोन की आर्थिक आत्मनिर्भरता की बात को गुरुमंत्र के रूप में गाँठ बाँध चुकी थी। सच में सीमोन प्रभा की गुरु और मित्र दोनों ही थी। प्रभा ने स्वीकारा भी है कि सीमोन से बड़ा बौद्धिक मित्र उसे आज तक नहीं मिला। उनके मेज पर गीता के साथ सीमोन की 'सेकेंड सेक्स' किताब भी

पड़ी रहती। 'सेकेंड सेक्स' में बिल्कुल सही लिखा है कि औरत की पहली लड़ाई अर्थ की दुनिया से शुरू होती है। प्रभा ने भी जीवन जीते हुए यही सीखा है कि पैसा कमाने से स्त्री निर्णय लेना सीखती है और निर्णय की क्षमता उसके संघर्ष को मजबूत करती है।

आलोच्य आत्मकथा में प्रभा खेतान ने 'यूनिवर्सल सिस्टरहुड' की मुद्दा को भी उठाया है। उन्होंने आत्मकथा में अमेरिकी समाज में स्त्री जीवन की पीड़ा,असहायता और अकेलेपन को गहरी संवेदना के साथ चित्रित किया है। स्त्री चाहे भारतीय हो या अमेरिकी, साड़ी-ब्लाउज पहने या पेंट-शर्ट, हर देश में और हर वेश में वह प्रताड़ित होती है। मिसेज डी के संदर्भ में कही आइलिन की यह बातें कि दुनिया का ऐसा कोई कोना बताओं, जहाँ औरत के आँसू नहीं गिरे हो, एक सनातन सत्य को उजागर करता है। मन में यह प्रश्न कौंधना स्वाभाविक है कि अमेरिकी प्रगतिशील समाज में डॉ. डी के प्रवंचना के बावजूद भी मिसेज डी डॉ. डी से क्यों चिपकी रहना चाहती है। सिर्फ इसलिए कि कैथोलिक समाज में तलाकशुदा स्त्री को आदर की दृष्टि से देखा नहीं जाता। क्या यह अमेरिकी समाज की प्रगतिशीलता है? स्त्री का यह सार्वकालिक और सार्वभौमिक शोषण और प्रताड़ना कब खत्म होगा। प्रभा अत्यंत व्यथित होकर कहती है- " तमाम इतिहास और भूगोल की सीमाओं से परे कहीं हम स्त्रियों का दर्द एक ही है। स्त्री के जीवन में दर्द के प्रसंग में एक बड़ी ठोस सार्विकता है जिसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। यह हाशिए पर पड़े हुए लोगों का दर्द है। यह उनकी सार्विकता है, उनकी समग्रता है।"[10]

इस प्रकार स्त्री-विमर्श जो पिछले तीन दशकों से हिन्दी साहित्य में निरन्तर अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराता रहा है उसे स्त्री लेखन विशेषतया आत्मकथाओं ने एक नया आयाम दिया और विकसित भी किया है। स्त्री आत्मकथाएँ स्त्री अस्मिता को दृढ़ करने के औजार के रूप में कार्य करती दिखाई देती है। और इन आत्मकथाओं में 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा का मूर्धन्य स्थान है।

***राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान,**
जयपुर परिसर, जयपुर

संदर्भ सूची-

1. स्त्री-विमर्श और पूंजीवाद का दुष्चक्र, संजीव कुमार जैन, आलोचना त्रैमासिक, सहस्राब्दी अंक 48, जनवरी-मार्च 2013, पृ. 101
2. आधी आबादी का सच, जैनेन्द्र कुमार पाण्डेय, साहित्य के दर्पण में स्त्री, संपा- डॉ. सियाराम, ओमेगा प्रकाशन, दिल्ली- 110002, संस्करण: 2013, पृ. 89
3. हंस की नारीवादी उड़ान, प्रभा खेतान, पितृसत्ता के नये रूप, संपादक मंडल- राजेन्द्र यादव : प्रभा

खेतान: अभयकुमार दुबे, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली- 110002, संस्करण : 2010, पृ. 16

4. हिन्दी साहित्य में स्त्री आलोचना : शुरूआत के दिन, सविता सिंह, आलोचना त्रैमासिक, सहस्राब्दी अंक 51, अक्तूबर-दिसम्बर 2013, पृ.75
5. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली- 110002, संस्करण : 2014, पृ. 244
6. स्त्रियों की पराधीनता, जॉन स्टुअर्ट मिल, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली- 110002, संस्करण : 2009, पृ. 25-26
7. स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य, क्षमा शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली- 110002, संस्करण : 2012, पृ. 100
8. स्त्री-विमर्श और पूंजीवाद का दुष्चक्र, संजीव कुमार जैन, आलोचना त्रैमासिक, सहस्राब्दी अंक 48, जनवरी-मार्च 2013, पृ. 103
9. हंस की नारीवादी उड़ान, प्रभा खेतान, पितृसत्ता के नये रूप संपादक मंडल- राजेन्द्र यादव ; प्रभा खेतान : अभयकुमार दुबे, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली- 110002, संस्करण : 2010. पृ. 21